Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)*with* International Impact Factor 8.357
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2501I1VXIIIP0002

e-ISSN No. 2394-8426
Monthly Issue
JAN-2025
Issue–I, Volume–XIII

पागलखाना उपन्यास में अभिव्यक्त बाजारवाद का स्वरूप

डॉ.गरिमा सिंह

522 A/ 21A/5A UNCHWA GARI,
RAJAPUR, PRAYAGRAJ, U.P. PIN- 211002
Email id- garimasingh1095@gmail.com

ज्ञान चतुर्वेदी हिंदी साहित्य जगत में सातवें दशक से ही सक्रिय रहे हैं। ये व्यंग्यकार के रूप में जीतने प्रसिद्ध हुए उतने ही उपन्यासकार के रूप में भी। उनके नाना ओरछा के राजकवि थे और मामा भी प्रसिद्ध कवि रहे अतः इन्हें साहित्यिक परिवेश इनके घर से ही प्राप्त हुआ। मैथिलीशरण गुप्त जैसे प्रसिद्ध कवियों का इनके घर आना-जाना लगा रहता था। यह एक महज संयोग है कि ये पेशे से हृदयरोग विशेषज्ञ थे लेकिन हिन्दी प्रेम ने इन्हें ज्यादा प्रसिद्धि दिलायी और अंततः ये हिन्दी के ही हुए।

इनके उपन्यासों में पागलखाना का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह उपन्यास फैंटेसी में रचा गया है। फंतासी और कल्पनाओं के जरिए पात्रों के माध्यम से उनसे उपजने वाले हालातों को टटोलने की कोशिश की गई है। ये अपनी रचनाओं में व्यंग्य और आलोचना को एक नए दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। इस उपन्यास के केंद्र में बाजार है और बाजार के केंद्रबिंदु में हम सभी हैं। बाजार हमें किस तरह से बदलता है। तोड़ता-मरोड़ता है। इसका यथार्थ इस उपन्यास में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इन्हीं बातों को लेखक एक धागे में पिरोता है। यह कृति एक टाइम मशीन में बैठाकर बहुत आगे ले जाकर बाजार के हो सकने वाले खतरों के प्रति आगाह भी करती है। किताब के आवरण पृष्ठ पर ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यह पुस्तक उन पागलों की कथा जो जीवन को बाजार से बड़ा मानते हैं यानी यह पंक्ति यह साफ कर देती है कि लेखक आपको किस दिशा में सोचने के लिए प्रेरित कर रहा है। इन्होंने अपनी रचनाओं में व्यंग्य के माध्यम से समाज को एक नए नजरिए से परखने की कोशिश की है। पागलखाना के माध्यम से लेखक बाजारवाद पर एक गहरा व्यंग्य रचता है कि किस प्रकार आज का समाज अपने जीवन को छोटा मानकर सभी भौतिक सुख-साधनों को अधिक महत्व देने लगा है। जबकि इस जीवन में मनुष्य का जीवन सर्वाधिक महातपूर्ण है बाकी चीजें द्वितीयक हैं। बाजारवाद का यथार्थ लेखक इन शब्दों में व्यक्त करता है कि- "बाजारवाद ने हमारी दुनिया कुछ यों बदलकर रख दी है, लगने लगा है कि यथार्थ में अब कुछ भी होना सम्भव है। फैंटेसी - सा यथार्थ हो गया है इस दुनिया का। इस उपन्यास को रचते हुए मैं कब फैंटेसी रचते- रचते यथार्थ के पाले में पाँव धर देता था और कब उसी फैंटेसी को जीवन में घटते देखकर चकित रह जाता था।"[1] इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि किस प्रकार बाजारवाद ने अपनी वास्तविकता को स्थापित कर दिया है। बाजारवाद ने मनुष्य को लाया या मनुष्य ने बाजारवाद को इस सन्दर्भ में मिल्टन क्रीडमैन ने कहा है कि- "बाजार अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत स्वतंत्रता सर्वोपरि है। एक मुक्त समाज का आधार आर्थिक स्वतंत्रता में निहित है।"[2]

Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)*with* International Impact Factor 8.357
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2501I1VXIIIP0002

e-ISSN No. 2394-8426
Monthly Issue
JAN-2025
Issue–I, Volume–XIII

बाजार की अर्थव्यवस्था को बताते हुए लेखक मिल्टन फ्रीडमैन कहते है कि बाजार में हमारी व्यक्तिगत स्वतंत्रता महत्वपूर्ण है पर इसी व्यक्तिगत स्वतंत्रता ने बाजारवाद को हावी कर दिया है बाजारवाद दिन-ब-दिन लोगों को व्यक्तिगत रुप से खलल पैदा कर रहा है। बाजारवाद हावी होते जा रहा है। पागलखाना उपन्यास में लेखक ने बाजारवाद के आलोचनाएं रुप को प्रस्तुत किया है लेखक यह समझाना चाहता है कि बाजार हमसे है हम बाजार से नहीं। वर्तमान समय में बाजार हम पर हावी होता जा रहा है। बाजारवाद ने हर घर में अपनी जड़े फैला ली है। इसी क्रम में लेखक कहता है कि- "बाजार जीवन के लिए बड़ा जरूरी है परन्तु जीवन को जब पूर्णत: बस बाजार के लिए होना ही मान लिया जाए, तब? जब जीवन का हर भाव, पल, निर्णय, रोना, गाना, हँसना, खाना, पीना, सोना, सम्बन्ध, लोक, कला, संस्कृति, किताब तथा हर सोच बाजार ही नियंत्रित करने लगे, तब ? बाजारवाद द्वारा निर्देशित यह दुनिया तब एक विराट पागलखाना नहीं बन जाएगी क्या ?हां, यह पागलपन ही कहलाएगा।"[3] लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से बाजारवाद पर गहरी आलोचना प्रस्तुत की है- "दुनिया बाजारवाद के कब्जे में आ गई थी। दुनिया बाज़ार में रहना और जीना सीख रही थी। पर कुछ लोगों ने बाज़ारवाद को पागलपन माना तथा बाज़ार को पागलखाना"[4] इस तरह लेखन बाजारवाद को नयी मिशाल पेश की है। इसी तरह लेखक कहता है कि- "मनुष्य को कानोंकान कान खबर नहीं हुई और जीवन पर बाज़ार का पूरा तरह कब्जा हो गया। यह सब कुछ इतने कौशल से हुआ कि स्वयं जीवन को ही अहसास नहीं होने दिया गया कि वह किसी के कब्जे में आ गया है।"[5] इस तरह यह उपन्यास में यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुआ है। "बाढ आ गई थी, तो बस्ती को तो डरना चाहिए था न, सामान उठाकर सुरक्षित जगहों पर चला जाना चाहिए था न ? परन्तु यही तो इस समय का गजबपन था। डरने या घबराने की जगह बस्ती इस बात का उत्सव मना रही थी कि देखो, बस्ती में बाढ़ आयी है। बाज़ार फैलता गया। बाढ़ का यही सिद्धान्त है, वह फैलती है तो सब कुछ उसकी चपेट में आता चला जाता है। बाज़ार अब तो वहाँ तक भी आ गया था जो पहले कभी बाज़ार था ही नहीं। पर बस्ती बिल्कुल भी परेशान नहीं थी; बल्कि बस्ती मजे में थी और लोग बड़े खुश थे।"[6] लेखक ने इस उपन्यास में यह दिखाया है कि किस प्रकार से बाज़ारवाद ने अपनी जड़े हर जगह फैला ली है। बाज़ारवाद में फँसकर मनुष्य पागल होता जा रहा हे वह मनुष्य के हर काम में बाज़ारवाद नज़र आने लगा है। बाहर या अन्दर किसी भी जगह बाज़ारवाद से कोई बच नहीं सकता है। यहाँ यह भी दिखाई देता है कि कैसे एक आदमी बाज़ारवाद को समझ लेने के बाद उससे बचने के तरकीबें सोचता है और वह सभी को बाज़ारवाद से बचने के तरीके को अपनाने को कहता है उसकी कोई भी नहीं सुतना है- "कहीं सारी मानव जाति ने ही तो सपने देखना बन्द नहीं कर दिया?कहाँ तो वह कभी खुली आंखों से भी खूब सपने देखा करता था और अब उसके पास कहीं कोई सपना ही नहीं ? अब तो चारों तरफ बस बाज़ार के सपने थे और सपनों का बाज़ार था। वह स्वयं को भी उतना ही अपराधी मानता है। क्यों वह शुरु-शुरु में बाज़ार के झाँसों में आ गया ? क्यों वह भी कभी इसी

बाज़ार का हिस्सा बन गया था"[7] सारी मानव जाति ने बाज़ार पर कब्जा करके बाज़ार को खुद ही इतना बना दिया कि बाजार के गिरफ्त में खुद ही आ गया सारी मानव जाति यह महसूस ही नहीं कर पायी कि बाज़ारवाद ने कैसे अपना पैर पसार कर कब्जा करके मनुष्य के ऊपर हावी हो गया। उपन्यास में वह आदमी बाज़ारवाद के चक्कर में फंसकर पागल हो गया है उसे दिन और रात का पता नहीं है वह हमेशा सपने देखता रहता है कि वह पैसे छुपाने के लिए एक सुरंग खोद रहा है। वह सुरंग सबसे छुपा के खोद रहा है तकि वह अपना सारा पैसा वहां से और बाज़ार की कोई भी वस्तु न ले उसके इस पागलपन से उस आदमी की पत्नी और लड़का दोनों परेशान है वह यह नहीं समझ पाते है कि वह सच में पागल है या पागलपन का नाटक कर रहा है। वह उन्हें डाक्टर के पास ले जाते है डाक्टर उन्हें समझाते है पर वह समझने को तैयार नहीं है। वह हमेशा सपनों की बात करता रहता है मेरा सपना कहीं खोता जा रहा है वह सपने में बड़बड़ाता है। वह हमेशा अपने घरवालों को बेड के नीचे बैठे हुए या लेटे मिलता है ऐसा लगता है कि वह किसी सुरंग से लौटा हो बाज़ार के सपने उसे हमशा आते रहते हैं- "अपने उत्पादों के बाज़ार की तलाश बुर्जुआ को पूरे भूमंडल में दौड़ाती है। इसे अपना नीड़ सर्वत्र बनाना है, इसे हर जगह बसना है, इसे अपना संबंध सर्वत्र फैलाना है।"[8] बाजारीकरण ने आज समूचे विश्व को एक बाजार बना डाला है बाजार के अलावा वह मनुष्य को मनुष्य न मानकर बाजार का एक यंत्र मानती है बाजारीकरण का एक सूत्र यह है कि मनुष्य अपने जरूरत से नहीं बल्कि बाजार की जरूरत के हिसाब से हर वस्तु को खरीदे- "हमारे देश में भी खुले बाजार व प्रतिस्पर्धा के लाभों की निरंतर चर्चा और वैश्वीकरण को इतना अधिक महिमामण्डित करने के प्रयास हो रहे हैं कि सारा मीडिया एक ही धुन पर चिटक रहा है। सरकार को उद्यमों व उद्योगों से निकाल बाहर करो, वह व्यावसायिक गतिविधियों की पीठ पर अनपेक्षित रुप से जमी हुई है।"[9] आज का मनुष्य इंसानियत की तरफ नहीं बल्कि अपने सपनों के पीछे भागता हुआ दिखाई देता है उसे मूलभूत वस्तु की तलाश नहीं है बल्कि दिखावा करने का सपना उसके मन में पलता रहता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ऐसा ही सुझाव बहुत पहले दिया था कि आज का मनुष्य एक तरह की पागल दौड़ में शामिल है उसे वह वस्तु चाहिए जिसकी उसके जीवन में ज्यादा उपयोगिता नहीं है। यहाँ भी मनुष्य अपने सपने को पूरा नहीं कर पाते हैं- "आजकल एक काला- सा थैला लेकर घूमते हैं वे। सड़कों पर यहां- वहां कुछ खोजते और बटोरकर थैले में धरते घूमते हैं। वे सड़क पर पड़ी सपनों की किरचे बटोरते फिरते हैं। अभी सहेज लेंगे तो आगे कभी अवसर बना तो सारे सपने फिर से जोड़ लेंगे। कभी न कभी यह दुनिया बाजार, पैसा, पूंजी, लाभ आदि के चगुंल से जरुर बाहर आएगी। तब टूटे सपनों का यही थैला काम आएगा। तब तक, इस थैले को सहेजना होगा।"[10] इस कथन से यह स्पष्ट है कि बाजारवाद के मोह में फंसकर व्यक्ति अपने सपनों को खोता चला जा रहा है। जिसमें कहा गया है कि- "बाजारवाद वह प्रणाली है जिसमें मांग और आपूर्ति के आधार पर

वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य निर्धारण होता है।"[11] इसी तरह उपन्यास में बाजारवाद पर एक गहरा व्यंग्य किया गया है कि किस प्रकार से इसने सारी दुनिया को अपने जाल में फँसा रखा है और सबको भ्रम जाल में रखा है- "बाजारवाद में व्यक्तियों को स्वतंन्त्रता दी जाती है कि वे अपने आर्थिक निर्णय स्वयं ले।"[12] बाजारवाद में हमें आर्थिक स्वतंत्रता तो होती है पर हम यह नहीं समझ पाते कि किस रुप में हम स्वतंत्र हैं क्योंकि एक तरह तो हमें स्वतंत्रता होती है और दूसरी तरफ हम उसी स्वतंत्रता के भ्रमजाल में घिरे होते हैं। इसी तरह हम देखते हैं बाजार ने हमारे सामने समस्याएं ही खड़ी कर दी है। इसी अर्थ में बाजारवाद को विद्वानों ने भिन्न- भिन्न रूप में देखने की कोशिश कि- "बाजारवाद एक प्रणाली है जो स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा करती है।"[13] इसी सन्दर्भ में लेखक कहता है कि- "अचानक ही बाजार ने अपनी पकड़ ढीली करके उन्हें आजाद कर दिया। अब उनके सामने बड़े ही अदब से खड़ा हुआ था बाजार। उन्होंने ध्यान से देखा उसे स्मार्ट, निकलते पेट को अन्दर की तरफ खींचे हुए, टाई, सूट, चमक, काइयांपन। चमकती आंखे। शिकार के लिए एकदम तत्पर जानवर जैसी मुद्रा जिसमें धैर्य भी है और छलांग लगाने की तत्परता - भरी बैचैनी भी।"[14] वास्तव में बाजारवाद में आर्थिक क्रियाकलापों का संचालन स्वतंत्रता और प्रतिस्पर्धा के आधार पर होता है। इसी तरह उपन्यास में दिखाया गया है- "शनै:- शनै: बाजार यो फैल गया कि जहां भी जीवन खोजने के लिए हाथ डालो वही जीवन की जगह बाजार हाथ आता था। अब बाजार को ही जीवन मान लेने के आग्रह थे। जीवन-मूल्य भी अब वही मान्य थे जिनका बाजार में भी कोई मूल्य हो वैसे सेंसेक्स ही एकमात्र मूल्य रह गया था। हर दरवाजा दुकान में खुलने लगा था। हर खिड़की से बाजार झांकता था। हर सांकल को बस बाजार ही खटखटाता था और हर शख्स एक ग्राहक में बदल चुका था।"[15] रचनाकार यह मान्यता है कि बाज़ार के बिना जीवन सम्भव नहीं है। लेकिन बाज़ार कुछ भी हो, है तो सिर्फ एक व्यवस्था ही जिसे हम अपनी सुविधा के लिए खड़ा करते हैं। लेकिन वही बाज़ार अगर हमें अपनी सुविधा और सम्पन्नता के लिए इस्तेमाल करने लगे तो? आज यही हो रहा है। बाज़ार अब समाज के किनारे बसा ग्राहक की राह देखता एक सुविधा-तंत्र-भर नहीं है। वह समाज के समानान्तर से भी आगे जाकर अब उसकी सम्प्रभुता को चुनौती देने लगा है। इस तरह पागलखाना उपन्यास में यह दिखाया है कि बाजारवाद ने कैसे एक जीते जागते अच्छे भले इंसान को पागल बना दिया है। और वह अन्तत: मौत को गले लगा लेता है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि यहां लेखक ने बाजार को लेकर एक फैंटेंसी रचने की कोशिश की है। यह उसके खतरे दिखाने के साथ समाज और व्यक्ति पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का भी कुशल ऑब्जरवेशन है। लेखक की अपनी एक भाषा शैली है। जो उन्हें बाकी व्यंग्यकारों से अलग तो बनाती ही है भाषा का एक नया संसार भी रचती है। उनके इस नए उपन्यास में भी भाषा के जरिए एक जादू बिखरने की कोशिश की गई है।

निष्कर्षतःउत्तरधुनिकता के दौर के सामाजिक ताने-बाने और बाजारीकरण के यथार्थ को यह उपन्यास बहुत सूक्ष्मता के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। इस तरह बाजार ने हमारी मानवीय कमज़ोरियों, हमारे प्यार, घृणा, गुस्से, घमंड की संरचना को जान लिया है, हमारी यौन-कुंठाओं को, परपीड़न के हमारे उछाह को, हत्या को अकुलाते हमारे मन को बारीकी से जान-समझ लिया है, और इसीलिए कोई आश्चर्य नहीं कि अब वह चाहता है कि हमारे ऊपर शासन करे। बाज़ार मनुष्य ने बनाया है अपनी सुविधा के लिए लेकिन अब वह उसकी चेतना पर हावी होकर उसे अपने जैसा बना रहा है। धीरे-धीरे एक ऐसी व्यवस्था बनती जा रही है जिसमें मनुष्य और उसके जीवनमूल्य खो रहे हैं। हम बाज़ार के गुलाम हो रहे हैं। आज बाज़ार की पहुँच जीवन में इस कदर हो गयी है कि हम उत्तरआधुनिक चकाचौंध से सराबोर किसी कृत्रिम दुनिया में जीने लग गये हैं जबकि वह हमारी नैसर्गिक दुनिया है ही नहीं। हम इस समानान्तर छलावे से बेखबर सो रहे हैं। सपनों का न आना अब हमारे लिए चिंता की बात नही रही। जो यह चिंता कर रहे हैं उन्हें पागल घोषित किया जा रहा है। 'पागलखाना' में लेखक सिर्फ ऐसे लोगों की कथा ही नही कहता बल्कि इनके माध्यम से ऐसी भागती-दौड़ती बाजारी व्यवस्था में बदलाव की हिमायत करता है। इसके माध्यम से वह हमें जीवन को जीवन की तरह देखने का विनम्र आग्रह करता है। उपन्यास में कई जगह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं पर बात की गयी है। तमाम वैचारिक सूत्र कथा और कथापात्रों के माध्यम से स्वयमेव उपजते हैं इसके लिए अलग से लेखक का कोई दखल नही है। इस लिहाज से मैं इस उपन्यास को समस्यामूलक विचारपरक द्वंदात्मक व्यंग्य उपन्यास भी कहा जा सकता है।

इस तरह उपन्यास में बाजारवाद पर एक गहरा व्यंग्य किया गया है जिसने समूची दुनिया और मानवीय सभ्यता को अपनी जाल में उलझाकर रख लिया है।

संदर्भ ग्रथ सूची:

1. चतुर्वेदी ज्ञान, 2020 पागलखाना, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं.-9
2. फ्रीडमैन मिल्टन, Capitalism and Freedom अध्याय – 1, पृ. सं. 12
3. चतुर्वेदी ज्ञान, 2020, पागलखाना, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 10
4. चतुर्वेदी ज्ञान, 2020, पागलखाना, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 27
5. चतुर्वेदी ज्ञान, 2020, पागलखाना, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 21
6. चतुर्वेदी ज्ञान, 2020, पागलखाना, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 25
7. चतुर्वेदी ज्ञान, 2020, पागलखाना, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 107
8. डॉ. अमरनाथ हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 259
9. डॉ. अमरनाथ हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 258
10. चतुर्वेदी ज्ञान, 2020, पागलखाना, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 195
11. Marshedl Alfred, Principles of Economics, 1890 Page No -50
12. Friedman Milton, Free to Choose, 1980, Page No 15-30
13. Hayek Friel rich, The Road of Serfdom, 1944, Page No 66-80
14. Henry Hazlitt, Economics in one lesson, 1946, Page No-35
15. चतुर्वेदी ज्ञान, 2020, पागलखाना, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.सं. 227